Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2023 GISRRJ | Volume 6 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

वेदार्थावबोध में स्वरों की उपादेयता

डॉ. संजीवनी आर्या
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विद्या भवन महिला महाविद्यालय, सिवान (बिहार)

Article Info
Volume 6, Issue 3
Page Number : 42-48

Publication Issue :
May-June-2023

Article History
Accepted : 01 June 2023
Published : 12 June 2023

सारांश – समस्त ज्ञानराशि का मूल वेद है। वेदों से ज्ञान प्राप्ति करने हेतु वेदार्थ की अत्यन्त आवश्यकता है। वेदों के अर्थ को सरलता से अवगमनार्थ छह वेदांगों की संरचना हुई। शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष। वेदों के अर्थ बोध हेतु शिक्षा रूपी वेदांग का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वर्णों का ज्ञान, वर्णों का उच्चारण, वर्णों के प्रयत्न इत्यादि अनेक विषय शिक्षा वेदांग द्वारा अधिगम किए जाते हैं। शिक्षा वेदांग का मुख्य विषय है स्वर। यद्यपि स्वर शब्द के अनेक अर्थ हैं तथापि वेदार्थ के अवबोध में मुख्य रूप से स्वर शब्द से उदात्त, अनुदात्त, स्वरित रूपी अर्थों को ग्रहण किया जाता है। उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित स्वरों का वेदार्थावगमन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। बिना स्वर ज्ञान के वेदार्थ अवबोध नहीं हो सकता है। उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित का ज्ञान वेदार्थ के अवबोध में किस प्रकार उपादेय है? उनका स्वरूप क्या है? उनके द्वारा अर्थ की स्पष्टता कैसे होती है? इत्यादि अनेक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत आलेख में प्रतिपादित किया गया है।

संकेत शब्द – स्वर, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, उपादेयता, वेदार्थावबोध ।

अर्थ की दृष्टि से स्वर शब्द बहुत ही व्यापक है। भाषाओं में स्वर शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग मिलता है। स्वर शब्द 'स्वृ' धातु से घञ् प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुआ है। जिसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है– **स्वयं राजन्ते इति स्वराः**[i] अर्थात् जो वर्ण बिना दूसरे की सहायता से स्वयं प्रकाशित अर्थात् उच्चारित हो उसे स्वर कहते हैं। माहेश्वर सूत्र के अन्तर्गत जो वर्ण अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत परिगणित किये गये हैं वे स्वर ही हैं। **अचः स्वरा इति।** फिट् सूत्रकार ने अच् के स्थान पर अष् का प्रयोग किया है **"लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः।**[ii] वर्ण सामान्य में स्वरों का वर्णन पूर्व किया जाता है। **तत्र स्वराः प्रथमम्।**[iii] वर्ण समाम्नाय में निर्दिष्ट स्वरों की संख्या में आचार्यों में मतभेद प्राप्त होता है। ऋक्प्रातिशाख्य के अनुसार **अष्टौ समानाक्षराणि चत्वारि सन्ध्यक्षराणि** कुल बारह स्वर हैं।[iv] नाट्यशास्त्र[v] एवं कातन्त्र व्याकरण[vi] के अनुसार स्वर वर्ण चौदह हैं। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के अनुसार वर्ण स्वरों की संख्या सोलह है।[vii] इसी प्रकार पाणिनीय शिक्षा में वर्ण स्वरों की संख्या इक्कीस है।[viii] ये स्वर वर्ण व्यंजनों में व्याप्त होते हैं। इन्हीं के सहायता से व्यंजनों का उच्चारण होता है।

अन्वग्भवति व्यंजनमिति।।स्वर शब्द लौकिक एवं वैदिक वाङ्मय में विविध अर्थो में प्रयुक्त होता है।

वाक् अर्थ – निघण्टु में स्वर शब्द का वाक् अर्थ वाले शब्दों में परिगणन किया गया है। अतः स्वर शब्द का वाक् अर्थ भी होता है। लेकिन ऐसा प्रयोग वेद में ही प्राप्त होता है।

षड्जादि अर्थ – नारद शिक्षा तथा पिंगल सूत्र के अनुसार गान के सा रे ग म प आदि सुरों को भी स्वर कहते हैं। यथा–

षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा।
पंचमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः।।[ix]

स्वराः षड्जर्षभगान्धारमध्यमपंचमधैवतनिषादाः।[x]

इनका प्रयोग ध्वनि विशेष के लिए होता है। ये शरीर वीणा या वेणु आदि से उत्पन्न होते हैं।

"शारीराः वैणवाश्चैव सप्त षड्जादयः स्वराः"[xi] ऋक्प्रातिशाख्य में इन षड्जादि स्वरों का प्रयोग यम नाम से किया गया है।[xii] मूलतः इनका प्रयोग सामशाखाओं में गान के लिए होता है। जहां इन्हें कुष्ट प्रथम द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

मन्द्र और अतिस्वार्य नाम से निर्देशित किया गया है। गोपथ ब्राह्मण में सूर्य सोम तथा पशु आदि अर्थों में भी स्वर शब्द का प्रयोग मिलता है। यथा–

एष ह वै सूर्यो भूत्वाऽमुष्मिन्लोके स्वरति।[xiii]

तद्यत् स्वरति तस्मात् स्वरः।
यदाह स्वरोऽसीति सोमं वा एतदाह।[xiv]

पशवो वै स्वराः।[xv]

षड्विंश ब्राह्मण में प्रजापति के लिए भी स्वर शब्द का निर्देश है। **प्रजापतिः स्वरः।**[xvi] शतपथ ब्राह्मण में श्री को स्वर शब्द से अभिहित किया गया है। **श्री वै स्वरः।**[xvii] ताण्ड्य ब्राह्मण में प्राण वायु अर्थ में स्वर शब्द का अर्थ प्राप्त होता है। **प्राणो वै स्वराः।**[xviii] इन्हीं स्वरों के लिए नासिका के वाम तथा दक्षिण क्रम से चन्द्रस्वर तथा सूर्यस्वर इन नामों का व्यवहार होता है।

सामान्यतया लोक में स्वर शब्द का प्रयोग ध्वनि के अर्थ में होता है। जैसे–जैसे वह उच्च स्वर से पाठ करता है। इस वाक्य में स्वर शब्द का अर्थ ध्वनि है।

उदात्तादि अर्थ :–

वर्ण स्वरों में रहने वाले उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित को भी स्वर कहते हैं। ये वर्ण स्वर मूलतः तीन हैं। उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित। उच्चतर या उदात्ततर और सन्नतर या अनुदात्तर क्रमशः उदात्त तथा अनुदात्त के ही भेद मात्र हैं। इसी प्रकार प्रचय तथा एकश्रुति भी उदात्तादि स्वरों से भिन्न नहीं हैं। इस प्रकार सामान्यतः उपर्युक्त अर्थों में स्वर शब्द का प्रयोग मिलता है।

स्वर परिचय – पाणिनीय शिक्षा तथा ऋक्प्रातिशाख्य के अनुसार उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित ये मुख्यतः तीन ही स्वर हैं।

1. **उदात्त –**

"उत् उच्चैरादीयते उच्चार्यते उदात्तः" जो स्वर कण्ठताल्वादि के ऊँचे स्थान से उच्चरित हो उसे उदात्त कहते हैं। यह उदात्त शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है। तीनों स्वरों में उदात्त स्वर मुख्य है। प्रायः सभी पदों में एक उदात्त स्वर अवश्य होता है। सामान्यतया किसी भी पद में उदात्त स्वर का ही निर्धारण किया जाता है। और बाद में अन्य स्वर निर्धारित होते हैं। इसी प्रकार उदात्त स्वर के साथ अनुदात्त या स्वरित का एकीभाव होने पर उदात्त स्वर ही परिणाम स्वर होता है।[xix] उदात्ततर तथा स्वरितगत उदात्त ये दोनों उदात्त स्वर ही है।

क. उदात्ततर –

वषट् या वौषट् इन निपात शब्दों का यज्ञ कर्मो में प्रयोग होने पर उदात्ततर स्वर होता है।[xx] यह स्वर उदात्त की तुलना में और ऊँचे स्थान से उच्चरित होता है इसीलिए सामान्य उदात्त से कुछ स्थानगत वैशिष्ट्य होने के कारण इसे उदात्ततर कहते हैं। उदात्त अथवा अनुदात्त का एकाक्षर में समावेश होने पर परिस्थिति विशेष में स्वरित स्वर होता है। इस स्वरित में भी प्रारम्भ की 1/4 या 1/2 मात्रा उदात्त से उदात्ततर होती है।

एकाक्षर समावेशो पूर्वयोः स्वरितः स्वरः।
तस्योदात्ततरोदात्तादनुदात्तर्धमेव वा।।

ख. स्वरितगत :–

स्वरित्तगत उदात्ततर अंश को अलग करने पर अनुदात्तांश बचता है इसकी उदात्तश्रुति होती है। यह भी उदात्त के समान अनुश्रुत होता है। इस प्रकार उदात्त स्वर एक ही प्रकृति है जो कि शुद्ध उदात्त उदात्ततर तथा स्वरितगत उदात्त की भी है।

2. अनुदात्त :–

उदात्त तथा अनुदात्त ये दोनों स्वतन्त्र स्वर हैं। इन दोनों का स्वभाव एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है परन्तु दोनों का सम्बन्ध आपस में प्रकाश तथा अन्धकार के समान नहीं है। प्रकाश तथा अन्धकार एक दूसरे के अभाव स्वरूप हैं। वैसे ही उदात्त का अभाव अनुदात्त तथा अनुदात्त का अभाव उदात्त नहीं है। इस प्रकार अनुदात्त एक स्वतन्त्र स्वर है। प्रयोग भेद से अनुदात्त का पाणिनि तथा अन्य आचार्य एक अतिरिक्त भेद मानते है। जिसे अनुदात्ततर स्वर कहा जाता है पाणिनि के अनुसार उदात्त के परे रहते अनुदात्तर का अनुदात्त स्वर होता है।[xxi] जिस प्रकार मनुष्य को लम्बी कूद कूदने के लिए कहा जाए तो वह उस स्थान से कूदने से पहले अपने शरीर को पीछे झुकाकर ही आगे कूदता है। उसी प्रकार अनुदात्त से उदात्त का उच्चारण करने में अनुदात्त का अनुदात्ततर उच्चारण करके ही उदात्त का उच्चारण सम्भव होता है। इसलिए उदात्त से पूर्व का अनुदात्त अनुदात्तर माना जाता है।

बलाबल की दृष्टि से अनुदात्त उदात्त से तो अल्पबलीय है ही स्वरित से भी इसमें कम बल होता है। प्रायः पद में विहित एक उदात्त या स्वरित को छोड़कर अन्य सभी अचों का अनुदात्त स्वर होता है।[xxii]

3. स्वरित :–

उदात्त तथा अनुदात्त स्वरों के समाहार को स्वरित कहते हैं।[xxiii] यह सम्मिश्रण नीर क्षीर न्याय से न होकर ऋक्प्रातिशाख्य के अनुसार तिलतण्डुल न्याय से होता है। वैदिक साहित्य में स्वरित के अनेक प्रकार मिलते है। जिनका वर्णन तत्तद् शाखागत प्रतिशाख्यों में है। जिनके नाम निम्नलिखित हैं– 1. सामान्य स्वरित, 2. जात्य स्वरित, 3. अभिनिहित स्वरित, 4. क्षैप्र स्वरित, 5. प्रश्लिष्ट स्वरित, 6. तैरोव्यञ्जन स्वरित, 7. वैवृत्त स्वरित, 8. तैरोविराम स्वरित, 9. तथा भाव्य स्वरित, 10. प्रातिहित स्वरित।।

प्रस्तावित तैरोव्यंजन आदि स्वरित के विविध प्रकार केवल परिस्थिति मात्र हैं इन सबका अन्तर्भाव सामान्य स्वरित के अन्तर्गत है।

स्वरों की संख्या :–

प्रकृति की दृष्टि से उदात्तादि स्वर मूलतः तीन ही हैं। किन्तु इनके अवान्तर भेदों के आधार पर इनकी संख्या में मतभेद है। जो निम्नलिखित है–

1. सात स्वर :–

महाभाष्यकार पतंजलि ने उदात्तादि स्वरों की संख्या सात बतलाई है।

सप्त स्वराः भवन्ति– उदात्तः, उदात्ततरः, अनुदात्तः, अनुदात्ततरः, स्वरितः, स्वरिते य उदातः सोऽन्येन विशिष्टः एकश्रुतिः सप्तमः।[xxiv]

2. पाँच स्वर :–

नारदशिक्षा के अनुसार उदात्तदि स्वरों की संख्या पाँच है– उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय तथा निघात।

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितप्रचिते तथा।
निघातश्चेति विज्ञेयः स्वरभेदस्तु पंचमः।।[xxv]

चार स्वर :–

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के अनुसार इनकी कुल संख्या चार है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा प्रचय।[xxvi]

तीन स्वर :–

आचार्य पाणिनि ने मुख्य रूप से तीन ही स्वरों को स्वीकार किया है उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित।

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।[xxvii]

दो स्वर :–

वाजसनेय प्रातिशाख्य में केवल दो ही स्वरों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके व्याख्याकार उव्वट के अनुसार ये दो स्वर उदात्त तथा अनुदात्त हैं।[xxviii]

शतपथ ब्राह्मण में भी ये ही दो स्वर हैं। इन्हें भाषिक स्वर कहते हैं।

एक स्वर :–

इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में केवल एक ही स्वर मिलता है। जिसे एकश्रुति कहते हैं।

यदि विचार करे तो प्रकृति की दृष्टि से यह प्रतीत होता है कि उदात्त मुख्य स्वर है। इसके अन्तर्गत उदात्ततर तथा स्वरितगत उदात्त स्वर अन्तर्भूत हैं। अनुदात्त मुख्य स्वर है। इसके अन्तर्गत अनुदात्ततर स्वर अन्तर्भूत है तथा निघात शब्द अनुदात्त का ही पर्याय है स्वरित स्वतन्त्र स्वर है। अवशिष्ट एकश्रुति उदात्त स्वर का ही भेद है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रकृति की दृष्टि से उदात्तादि मूलतः तीन ही स्वर हैं। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित इसके अतिरिक्त स्वर इन्हीं के भेद मात्र हैं। उदात्तादि स्वरों के द्वारा ही षड्जादि स्वरों की उत्पत्ति होती है। यथा–

उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्तो ऋषभधैवतौ
स्वरितप्रभवाह्येते षड्जमध्यमपंचमाः।।[xxix]

1. उदात्त स्वर से निषाद और गान्धार स्वर की 2. अनुदात्त से ऋषभ तथा धैवत स्वर की एवं 3. स्वरित स्वर से षड्ज मध्यम पंचम की उत्पत्ति होती है।

स्वरों की उपादेयता :–

वेदाध्ययन में स्वरों का ज्ञान अत्यावश्यक है इन स्वरों के स्वर कहने का कारण यह है कि ये वेदार्थज्ञापक होते है। इस आधार पर स्वर शब्द का निर्वचन **"स्वर्यन्तेऽर्था एभिः"** इस प्रकार किया गया है। अर्थात् इन उदात्तादि स्वरों के द्वारा पदों के अर्थ प्राप्त किये जाते हैं। अतः इन्हें स्वर कहते हैं। अर्थ की दृष्टि से शब्द दो प्रकार के होते हैं। एकार्थ और अनेकार्थ एकार्थ शब्द संस्कृत भाषा में बहुत कम हैं और वैदिक भाषा में प्रयासपूर्वक अन्वेषण करने पर शायद कुछ मिले हैं। एकार्थ शब्दों के अर्थ ज्ञान में ज्यादा जटिलता नहीं होती है। अनेकार्थ शब्दों की लौकिक एवं वैदिक दोनों ही भाषाओं में अधिकता है। इस प्रकार के शब्दों के अर्थज्ञान में विशेषकर वैदिक भाषाओं में तो जटिलता के विषय में पूछना ही क्या है ? इस दुरूहता का समाधान अन्य अर्थज्ञापकों की अपेक्षा स्वर के माध्यम से ही विशेष सम्भव होता है। वेंकटमाधव ने कहा है–

अन्धकारे दीपिकाभिर्गच्छन् स्वरलति क्वचित्।
एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटा इव।।

अर्थात् जिस प्रकार अन्धकार में मशाल की सहायता से चलने वाला व्यक्ति कभी नहीं गिरता है, उसी प्रकार स्वर की सहायता से किए गए अर्थ निश्चित ही सन्देह रहित होते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वेदार्थ में उपयोगी होने से संक्षेप में स्वरों की व्याख्या लिखते हैं।[xxx] इसी प्रकार सौवर ग्रन्थ की भूमिका में स्वर की वेदार्थ में क्या उपयोगिता है और उसके अज्ञान से क्या हानि हो सकती है इसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया –

i. जब तक उदात्तादि स्वरों को ठीक–ठीक नहीं जानते तब तक ठीक–ठीक अर्थ नहीं जान सकते हैं।
ii. जब मनुष्यों को उदात्तादि स्वरों का ठीक–ठीक बोध हो जाता है तब स्वर लगे हुए लौकिक वैदिक शब्दों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है।
iii. इसलिए जैसा इष्ट अर्थ हो वैसे स्वर और अर्थ का ही नियम पूर्वक उच्चारण करना चाहिए।
iv. एक प्रकार के शब्दों का अर्थभेद स्वर व्यवस्था के जानने से ही मिलता है।
v. जो स्वर व्यवस्था का बोध न हो तो लौट पौट व्यभिचार हो जाने से बड़ा अन्धेर फैल जाता है।
vi. उदात्तादि स्वर ज्ञान के बिना अर्थ की भ्रान्ति नही टूटती।

इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण इस प्रकार है–

1. सामान्यतया भ्रातृव्य शब्द के दो अर्थ प्रचलित हैं–

शत्रु तथा भतीजा। इन दोनों अर्थों को दृष्टि में रखते हुए **भ्रातृव्यस्य वधाय** इस मत्रांश का क्या अर्थ हो ? यह एक सन्दिग्ध स्थल बन जाता है। ऐसे सन्देह का निराकरण स्वर ज्ञान के माध्यम से ही सम्भव है। भ्रातृव्य शब्द **व्यन् सपत्ने**[xxxi] सूत्र से व्यन् प्रत्यय तथा नित्वात् **ञ्नित्यादिर्नित्यम्**[xxxii] सूत्र से आद्युदात्त होकर शत्रु अर्थ होता है तथा **भ्रातुर्व्यच्च**[xxxiii] सूत्र से व्यन् प्रत्यय तथा तित्वात् **तित् स्वरितम्**[xxxiv] से अन्तस्वरित होकर भतीजा अर्थ होता है।

2. शान्ति मन्त्र का पाठ करते समय प्रार्थना करते है **सा मा शान्तिरेधि**[xxxv] अर्थात् शान्ति मुझे प्राप्त हो। यहाँ मा का अर्थ निषेध और मुझको दोनों होता है जब मा पद **निपाताः आद्युदात्ताः**[xxxvi] से आद्युदात्त होगा तो उसका अर्थ निषेध होगा और जब **त्वामौ द्वितीयायाः**[xxxvii] से मा आदेश और अनुदात्त होगा तो उसका अर्थ मुझे होगा। इस मन्त्र में जो मा पद है वह अनुदात्त है अतः मा का अर्थ निषेध परक न होकर मुझे होगा।
3. **क्षयो निवाजे**[xxxviii] **जयः करणम्**[xxxix] सूत्रों से भी स्पष्ट है कि जब क्षय शब्द आद्युदात्त होगा तब इसका अर्थ गृहवाची होगा **क्षियन्ति निवसन्ति अस्मिन् इति क्षयः।** और जब क्षय शब्द **आद्युदात्तश्च**[xl] प्रत्यय स्वर से घ प्रत्यय उदात्त होकर क्षय शब्द अन्तोदात्त होगा तो नाश या हानि अर्थ का वाचक।
4. इसी प्रकार जय शब्द जब उपर्युक्त सूत्र से आद्युदात्त होगा तो जीत के साधन अश्वादि का वाचक होगा। **जयन्ति तेन इति जयः** और जब **आद्युदात्तश्च**[xli] प्रत्यय स्वर से घ प्रत्यय उदात्त होकर जय शब्द अन्तोदात्त का वाचक होगा तो जीत अर्थ का अभिधेयक होगा।
5. त्वष्टा नामक असुर ने अपने पुत्र वृत्रासुर की वृद्धि के लिए एक यज्ञ का आयोजन किया। इस यज्ञ में ऋत्विजों ने इन्द्रशत्रुवर्धस्व इस मत्रांश के अन्तोदात्त इन्द्रशत्रु शब्द के स्थान में आद्युदात्त इन्द्रशत्रु शब्द का प्रयोग किया। अन्तोदात्त इन्द्रशत्रु शब्द का अर्थ होता है– **इन्द्रस्य शत्रुः इन्द्र शत्रुः**[xlii] अर्थात् इन्द्र को मारने वाला तथा आद्युदात्त इन्द्र शत्रु शब्द का अर्थ है– **इन्द्रः शत्रुः यस्य सः इन्द्रशत्रुः।**[xliii] अर्थात् इन्द्र है मारने वाला वह बढ़े। इन दोनों अर्थ भेदों का ज्ञान स्वर के ही माध्यम से सम्भव है। इस प्रकार स्वर ज्ञान के बिना मन्त्रों का प्रयोग हानिकारक होता है।

दुष्टः शब्दः (मन्त्रो हीनः) स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।[xliv]

इस प्रकार उदात्तादि स्वरों के परिज्ञान के लिए तथा सम्यक् शब्दज्ञान एवं अर्थावबोध के लिए स्वर ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है।

पदस्वरूप ज्ञान में स्वरों की उपादेयताः–

स्वर ज्ञान का महत्वपूर्ण उद्देश्य शब्द ज्ञान के साथ–साथ पदस्वरूप का ज्ञान भी कराना है। स्वर के माध्यम से ही यह स्पष्ट होता है कि वैदिक संहिताओं में सामगान को छोड़कर कितना अंश एक पद है। तथा कितना अंश दूसरा पद है यह स्पष्ट ज्ञात होता है

1. वाचस्पति में वाचस् अन्तोदात्त है बृहस्पति में बृहस् आद्युदात्त है यदि बृहस् भी वाचस् के सदृश हकारान्त बृह् शब्द का षष्ठी एक वचन होता तो **सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः**[xlv] इस निरपवाद नियम के अनुसार अन्तोदात्त होता। बृहस्पति में बृहस् आद्युदात्त है अतः स्पष्ट है कि यह हकारान्त बृह् शब्द का षष्ठी एकवचन नहीं है। अपितु कसुन् प्रत्ययान्त स्वतन्त्र शब्द है और प्रत्यय के नित् होने से **ञ्नित्यादिर्नित्यम्**[xlvi] से आद्युदात्त है। वेद में जहां कहीं भी वाचस्पति आदि पदों में एकाच् शब्द के षष्ठी एकवचन से परे पति शब्द का निर्देश उपलब्ध होता है वहाँ सर्वत्र दोनों स्वतन्त्र पृथक्–पृथक् पद हैं समस्त नहीं। पदकारों ने भी ऐसे स्थानों पर पृथक्–पृथक् पद ही दर्शाये हैं। बृहस्पति पद समस्त है। पदकार भी इसे एक ही मानते है। अतः बृहस् को वाचस् के सदृश षष्ठी एकवचन का रूप नहीं मान सकते।
2. **नतस्य प्रतिमा अस्ति–** स्वर के बिना इस मंत्राश के भी दो अर्थ भाषित होते हैं– इस झुके हुए की प्रतिमा है और दूसरा अर्थ होगा उसकी प्रतिमा नहीं है। इस प्रकार यहां भी वास्तविक अर्थ सन्दिग्ध हो जाता है यहां स्वर का आश्रय लेने से यह स्पष्ट होता है कि देवता द्वन्द्व[xlvii] तथा तवै प्रत्ययान्त[xlviii] पदों को छोड़कर सामान्यतया एक पद में एक ही उदात्त स्वर होता है। अतः न तस्य इस स्थल में न तथा त के अकार का उदात्त स्वर भी स्पष्ट है अतः उपर्युक्त दूसरा अर्थ ही वास्तविक है अर्थात् उसकी प्रतिमा नहीं हैं।
3. **कुहकस्य**[xlix] इस मन्त्रांश में एक पद है या अनेक पद ऐसा सन्देह होता हैं यहां भी दो उदात्तों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि कुह तथा कस्य ये दो स्वतन्त्र पद हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वेदार्थावबोध में स्वर का अप्रतिम स्थान हैं। लौकिक तथा वैदिक उभयविध वाङ्मय में आचार्यों ने वेदार्थ में स्वर की उपयोगिता को स्वीकार किया है।

वेद के वास्तविक शब्द ज्ञान के लिए अर्थज्ञान के लिए स्वरशास्त्र का जानना अत्यावश्यक है।

सन्दर्भसूची

i महाभाष्य 1.2.29
ii फिट्सूत्र 2.19
iii वाजसनेय प्रातिशाख्य 8.2
iv ऋक्प्रातिशाख्य 1.3
v नाट्यशास्त्र 14.8
vi कातन्त्र व्या. 1.1.2
vii तैत्तिरीय प्रातिशाख्य 1.5
viii पाणिनीय शिक्षा 4
ix नारदशिक्षा 1.2.4
x पिङ्गलसूत्र 3.64
xi नाट्यशास्त्र 6.24
xii ऋक्प्रातिशाख्य उव्वट व्याख्या 13.44
xiii गोपथ ब्रा0 1.5.14
xiv गोपथ ब्रा0 1.5.14
xv ऐतरेय ब्रा0 3.24
xvi षड्विंश ब्रा0 3.7
xvii शत0 ब्रा0 11.4.2.10
xviii ताण्ड्य ब्रा0 24.11.9
xix पा0 सू0 8.2.5
xx पा0 सू0 1.2.35
xxi पा0 सू0 1.2.40
xxii पा0 सू0 6.1.158
xxiii पा0 सू0 1.2.31
xxiv महाभाष्य 1.2.33
xxv नारदशिक्षा 1.7.19
xxvi तैत्तिरीय प्रातिशाख्य 13.18–20
xxvii पाणिनीय शिक्षा 11
xxviii वाजसनेय प्रातिशाख्य 1.129
xxix पाणिनीय शिक्षा 12
xxx ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ 374
xxxi पा0 सू0 4.1.145
xxxii पा0 सू0 6.1.197
xxxiii पा0 सू0 4.1.44
xxxiv पा0 सू0 6.1.185
xxxv शुक्ल यजुर्वेद 36.17
xxxvi फिट्सूत्र 4.12

xxxvii पा0 सू0 8.1.23
xxxviii पा0 सू0 6.1.201
xxxix पा0 सू0 6.1.202
xl पा0 सू0 3.1.3
xli वहीं।
xlii षष्ठीतत्पुरूष समास
xliii बहुव्रीहि समास
xliv महाभाष्य पस्पशाह्निक।
xlv पा0 सू0 6.1.168
xlvi पा0 सू0 6.1.197
xlvii पा0 सू0 6.1.200
xlviii पा0 सू0 6.2.141
xlix ऋग्वेद 10.129.1